तेरी मेरी सबकी बात

धार्मिक आक्रामकता और आधुनिक समूहवाद

संथारा प्रकरण फिलहाल थम गया है। चार-पाँच वर्ष पहले भी एक अन्य महिला द्वारा संथारा को अपनाने और प्राण त्यागने का मामला सामने आया था। वे चित्र सोशल मीडिया में घूमे थे और उस समय भी चर्चा का विषय बना था। राजस्थान हाइकोर्ट के निर्णय ने संथारा को आत्महत्या का रूप ही माना और इसे गैरकानूनी करार दिया। जैन धर्मावलंबियों ने विरोध में जुलूस निकाले, प्रदर्शन किया और साथ ही सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। दो-एक महानुभावों ने इस निर्णय को खुली चुनौती दी और स्वयम् संथारा पद्धति से प्राण त्यागने का सार्वजनिक एलान भी किया।

कई लोगों, विशेषकर जैन धर्म से जुड़े कानूनविदों ने भी इस निर्णय को अतर्कसंगत ठहराया। एक लेख कांग्रेस के प्रवक्ता और वरिष्ठ कानूनविद् श्री अभिषेक संघवी का आया। वे भी कानूनी नुक्तों के आधार पर उच्च न्यायालय के निर्णय से असहमत थे। अंततः सुप्रीम कोर्ट ने राजस्थान हाई कोर्ट द्वारा दिये गये निर्णय पर रोक लगा दी है। धार्मिक रूप से खदबदाते आज के इस वातावरण में धार्मिक प्रथाएं लंबे अंतराल के बाद फिर-फिर चर्चा का विषय बन रही हैं और समाज में केंद्रीय स्थान ग्रहण करने लगी हैं। हालांकि इन परंपरागत प्रथाओं की व्याख्या सिर्फ धार्मिक आधार पर की जा सकती है।

जहाँ तक कानूनी बिन्दुओं का प्रश्न है लगभग सभी लेखों में संविधान प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता और अपनी आस्थाओं के अनुरूप कर्मकांड की स्वतंत्रता की बात कही गयी। धार्मिक बहुलतावादी इस देश में सभी धर्मों के अनुयायी अपनी आस्थाओं और परंपराओं के अनुसार व्यवहार करने के लिये स्वतंत्र हैं। व्रत-उपवास जैसे कर्मकांडों को धर्म के दार्शनिक पक्ष से जोड़ने का प्रयास भी किया जाता रहा है, क्योंकि हिन्दू धर्म आत्मा-परमात्मा, पाप-पुण्य, जन्म-पुनर्जन्म जैसी अवधारणा पर ही अवस्थित है जिसमें चेतन और अवचेतन की विविध प्रकार की स्थितियों की दार्शनिक व्याख्या होती रही है। नश्वर शरीर की पवित्रता, अनश्वर-प्रकृति रूप ईश्वर से एकाकार होने का मार्ग भारतीय दर्शन के विविध संस्करण प्रशस्त करते हैं। जैन धर्म में संथारा के रूप में भी एक मार्ग सुझाया गया है।

बुद्ध हों या जैन धर्म के प्रणेता तीर्थंकर-महावीर स्वामी हों, वर्ण आधारित ब्राह्मणवादी हिन्दू धर्म के सामने इन लोगों ने जिन वैकल्पिक धर्मों की स्थापना की उसके मूल में वर्ण व्यवस्था के आधार पर विभाजित बहुसंख्यक शोषित-पीड़ित समाज को राहत देना था। दोनों के सम्मुख वर्ण विभाजित समाजों के बीच व्याप्त अन्याय, शोषण और होने वाली हिंसा चिंता का विषय थी।

बौद्ध धर्म क्षेत्र और राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए दूर-दूर तक फैला और अंततः (विशेष रूप से अपने देश में) मठों और संस्थानों तक सिमट गया। जैन धर्म ने भी प्रतिपादित सिद्धांतों को अपनाने का आह्वान किया, आध्यात्मिक शांति का रास्ता दिखाया और सामान्यजन में अपनी जगह बनाई। यहां इस नश्वर संसार में पीड़ित जनों को शांति प्रदान करने की परिकल्पना थी, वह शांतिमय जीवन जिस पर सभी का अधिकार होना चाहिये। बौद्ध धर्म की भांति जैन धर्म भी एक समय विभिन्न राजसत्ताओं द्वारा स्वीकार्य हुआ जिसने इसके प्रचार-प्रसार को बढ़ाया। राजधर्म के रूप में जब कोई धर्म अंगीकृत हो जाता

है तो समाज के उच्च और कुलीन वर्ग भी उसे सहजता से अपनाते हैं। धर्म का संबंध सदैव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सत्ता और व्यवस्था से रहा है। इसीलिये यह इतिहास सम्मत है कि जरूरत पड़ने पर सत्ता के लोगों द्वारा या समाज के प्रभावशाली समूह द्वारा धर्म का इस्तेमाल अपने वर्गहितों के लिये किया जाता रहा है। इसीलिये जनहितकारी और लोक कल्याण हेतु नये धर्मों-पंथों की स्थापना महापुरुषों ने असहाय-पीड़ितों-वंचितों के लिये की, कालांतर में वे भी समाज के प्रभावशाली वर्गों की रीति-नीति का हिस्सा बन गये। इसका सबसे ताजा उदाहरण पिछली सदी के अंतिम दशकों में राम मंदिर पर होने वाले आंदोलनों के दौरान दिखाई दिया। कितने ही प्रभावशाली जैन समाज के और आर्य समाज के महानुभाव जिनमें अनेक बड़े व्यापारी भी थे, राम मंदिर आंदोलन की अग्रणी पंक्तियों में थे। मूर्तिपूजा के विरोधी आर्य समाज के प्रणेता स्वामी दयानंद सरस्वती ने एक बार अपने भाषण में कहा ''मेरा बस चले तो समस्त देवी-देवताओं की मूर्तियां हिंद महासागर में बहा दूँ।'' आर्य समाज की स्थापना उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हुई जिसका मुख्य उद्देश्य ही सामाजिक कुरीतियों को, अंधविश्वास और रूढ़ियों को दूर करते हुए, स्त्रियों को शिक्षित कर समाज के प्रत्येक वर्ग के बीच समता स्थापित करना था। जैन धर्म में भी परंपरागत चले आ रहे वर्चस्ववादी धार्मिक समूहों से अलग बिना किसी भेदभाव के अहिंसा और अपरिग्रह जैसे सिद्धांतों का प्रचार था।

बहुलतावाद भारतीय समाज की विशेषता है। एक साथ विभिन्न पंथ, धर्म और समुदाय के लोग सदियों से साथ रहते आये हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर परस्पर रसाकर्षण (ऑस्मोसिस) सहज-स्वाभाविक है। इस प्रक्रिया में समुदायों ने परस्पर सद्गुण तो शायद कम ग्रहण किये क्योंकि त्याग, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य जैसे आचार-विचार कष्ट साध्य होते हैं। इसके विपरीत दूसरी तरह के सांसारिक व्यवहार अधिक आकर्षित करते हैं। ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था का आरंभ से बौद्ध धर्म से विरोध रहा। वर्ण आधारित हिंदू धर्म जन्म-पुनर्जन्म की तथा अवतारवाद की अवधारणा पर आधारित है। इसके विपरीत बौद्धधर्म क्षणवाद में विश्वास करता है। लेकिन अंततः बुद्ध भी अवतारवाद का हिस्सा बन कर मंदिरों में स्थापित हो गये। समता और बंधुत्व पर आधारित इस्लाम धर्म भारत के वर्ण विभाजित समाज में ऐसा रच-पग गया कि वहां भी ऐसी ही अपरोक्ष जातिगत श्रेणियाँ दिखाई देने लगीं।

आज देश का माहौल हाई टैक्नोलोजी से संचालित तो है लेकिन विज्ञान से दूर हो रहा है। दरअसल विज्ञान तो तार्किकता और प्रमाण आधारित होता है। शोध आधारित नयी खोजों ने मानव समाज को विकास की इस आश्चर्यजनक ऊँचाई तक पहुँचाया है। विज्ञान नैतिकतावादी स्वरूप के साथ समाजोन्मुख होता है लेकिन जब विज्ञान तकनीक का रूप ग्रहण कर लेता है तो फिर यह विशुद्ध बाजारवाद का हिस्सा बन जाता है और व्यापार के रूप में नैतिकता की सामाजिक जिम्मेदारी से मुक्त हो जाता है।

धार्मिकता का वातावरण विशुद्ध रूप से भाववादी और आस्था के आधार पर निर्मित होता है। आस्था किसी भी तर्क या प्रमाण से परे होती है और सामूहिक रूप में यह तर्कहीनता अराजकता में भी परिवर्तित हो सकती है। भारत के लोकतंत्र में विभिन्न जातिगत समूह अनेक प्रकार के शक्ति केंद्र बनकर अपने वर्गहितों के लिये सत्ता और व्यवस्था पर दबाव भी निर्मित करते हैं। बड़ा पूंजीपति और उद्योग जगत अपने पूंजीबल से दबाव बनाते हैं वहीं अन्य सामाजिक समूह अपने संगठित संख्या बल के आधार पर अनेक प्रकार के राजनैतिक दबाव निर्मित करते हैं। कहना न होगा कि अधिकांशतः यह दबाव वोट बैंक के रूप में ही होता

है। भारत में जहां समाजवादी आन्दोलन मृतप्राय हो गये हों, किसान, मजदूरों के वर्गीय संगठन नयी अर्थव्यवस्था में बिखर गये हों और विचार हीनता का दौर प्रबल हो, संगठन जाति और धर्म के आधार पर ही हो सकता है क्योंकि इसमें किसी तथ्य, किसी तर्क की जरूरत नहीं होती। अंध आस्था सबसे ज्यादा अतार्किक और आक्रामक होती है और इसमें समाज का कमोबेश हर वर्ग समावेशित हो सकता है।

आज देश में धार्मिक आक्रामकता का वातावरण है। इसके आधार पर समूहों को और असामाजिक तत्वों को भी मनचाहा करने की छूट मिल जाती है। आस्था का सवाल मानो कुछ भी करने की छूट दे देता है। संथारा पर लगी रोक का विरोध जैन समाज ने अपनी धार्मिक आस्था और परंपरा के आधार पर किया। राजनैतिक स्तर पर भी उसे समर्थन मिल गया। आज के समय में सभी मसले राजनीति की कसौटी पर तय किये जाते हैं। वोट बैंक की राजनीति सर्वोपरि हो जाती है। हरियाणा की खाप पंचायतों ने अपनी मर्जी से विवाह करने पर लड़के-लड़कियों की जान ले लेने के फ़तवे ही नहीं सुनाये हैं बल्कि 'सम्मान' के नाम पर इन हत्याओं का ऐसा सिलसिला शुरू हुआ कि देश-विदेश तक इन 'असम्मान हत्याओं' पर चर्चा होने लगी। चिंता की बात तब हुई जब अनेक राजनेताओं ने भी इन अमानवीय, असंवैधानिक फ़तवों को और पंचायत की कार्यवाहियों को समर्थन दिया। मामला फिर वही वोट की राजनीति का है जिस का उस समय अनेक सामाजिक संस्थाओं और महिला संगठनों ने तीव्र विरोध भी किया था।

'संथारा' जीवन-मरण के चक्र में शरीर को सम्मानजनक रूप से पूरी चेतना के साथ, दूसरे चरण की आध्यात्मिक यात्रा के लिये प्रस्तुत करने का दर्शन है। इसमें जैन धर्म के आधारभूत सिद्धांत, अर्थात् नितांत वैयक्तिक 'मोक्ष' की अवधारणा है। आत्मा का उन्नयन, जीवनमरण के चक्रों से मुक्ति अंतिम निर्धारित लक्ष्य है। लेकिन एक प्रश्न जो उठाया जा रहा है कि व्यक्तिगत आकांक्षा-महत्वाकांक्षा इसे व्यक्तिगत हितों के लिये कहीं सती जैसे स्तर तक न पहुंचा दे। बाजारवादी मानसिकता ने आज धनलिप्सा के कारण मनुष्य को बेहद लालची और संवेदनहीन बना दिया है। सदियों से चली आ रही सती प्रथा को उन्नीसवीं सदी में प्रतिबंधित करने में समाज सुधारकों की, पारंपरिक हिंदू समाज के गहन प्रतिरोध के बावजूद कठिन और लंबी मुहिम चली थी। इसके बावजूद अक्सर सती प्रकरण सुनाई देते रहे हैं। राणी सती मंदिर और वहां होने वाले उत्सव आज भी इसे महिमा मंडित करते रहे हैं। पिछली सदी के नवें दशक में देबराला, राजस्थान की रूपकुंवर के तथाकथित सती कांड ने जो वास्तव में हत्याकांड था, पूरे देश को झकझोर कर रख दिया था। आज जब अक्सर परिवारों में, विशेषरूप से वृद्धजनों के साथ अमानवीय संवेदनहीनता के किस्से आये दिन सुनने में आते हैं, वहां इस प्रथा के औचित्य पर भी विचार करना शायद जरूरी हो।

कहा जाता है कि 'आक्रामकता सर्वश्रेष्ठ सुरक्षा' होती है। संथारा प्रकरण पर होने वाली बहस पर सर्वोच्च न्यायालय की रोक जैन धर्म वालों के लिये जीत बनी। लेकिन क्या यह जीत की उत्सवधर्मिता थी कि जैन समाज की मांग पर पर्यूषण पर्व पर अनेक राज्यों में मांस की बिक्री पर रोक लगा दी गयी। एक बार फिर धार्मिकता, राजनीतिक मंतव्यों के साथ सामाजिक परिदृश्य पर दिखाई देने लगी। लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात, धार्मिक स्वतंत्रता की बात हर वर्ग-समूह के लिये है। फिर अपने आचार-विचार के आधार पर दूसरे समूहों के रहन-सहन, खानपान की स्वतंत्रता को कैसे बाधित किया जायेगा? यह प्रतिबंध क्या सोची समझी रणनीति है जिसे कभी जैन धर्म के उपवास पर्व तो कभी गणेश

चतुर्थी जैसे उत्सवों के नाम पर लागू किया जाता रहेगा? किसी वर्ग या समुदाय पर प्रहार, जरूरी नहीं हथियारों से ही हो। साम्राज्यवादी तरीका है उसके आर्थिक आधार को कमजोर करना। पशु कटान और मांस पर प्रतिबंध एक समुदाय को आर्थिक रूप से क्षतिग्रस्त करना है, उनकी जीविका पर प्रहार करना है। मांस के व्यवसाय पर आश्रित अनेक समूहों के बारे में हम समाचार भी पढ़ रहे हैं कि उनकी रोजी रोटी का साधन नहीं रहा है।

यह भी एक भ्रम ही है कि केवल गैरहिन्दू समुदाय (ईसाई-मुस्लिम) ही मांसाहारी हैं। हिन्दुओं की बड़ी संख्या मांसाहारी है। मैं उत्तरांचल के कुमायूँ की रहने वाली हूँ। स्वयम् मैं पूरी तौर पर शाकाहारी हूँ लेकिन हमारे ब्राह्मण समुदाय में भी अधिकतर पुरुषवर्ग मांसाहार पसंद है। घर की औरतें अलबत्ता परहेज करती रही हैं। औरतों के लिये हमारे समाज में वैसे भी पुष्ट आहार का निषेध रहा है। वहां एक जमाने में सड़क के किनारे लकड़ी के खोखानुमा छोटे ढाबों में अक्सर हमने ग्राहकों को 'एक गिलास चाय और एक प्लेट गोश्त' की मांग करते देखा। मुझे बहुत अजीब लगता था कि यहां यह स्नैक्स की तरह से खाया जा रहा है। मेरी जानकारी में मुस्लिम समुदाय में भी खासा बड़ा वर्ग शाकाहारी है। इसीलिये खान-पान, रहन-सहन की जीवन पद्धति को धार्मिक जामा पहनाना और उसके जरिये विभाजनकारी राजनीतिक संदेश प्रसारित करना लोकतांत्रिक व्यवस्था के विरुद्ध तो है साथ ही समाज में अलगाववादी ताकतों को मजबूत होने का रास्ता प्रदान करना भी है।

गोवध पर प्रतिबंध धार्मिक और राष्ट्रीय भावनाओं के अनुरूप है तो इसके लिये पर्याप्त गौशालाएँ खोली जानी चाहिये और उनकी उचित व्यवस्था होनी चाहिये। सड़कों पर आवारा घूमती, कूड़े के ढेर पर खड़ी अपना आहार ढूंढ़ती, पॉलीथीन खाती गायों के स्वामियों पर भी दंड की व्यवस्था होनी चाहिये। ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन और पॉलीथीन अनेकबार उनकी मृत्यु का कारण बनता है। मेरे शहर में आजतक इस दिशा में कोई कदम किसी नेता ने, संगठन ने नहीं उठाया। हाँ, अनेकबार उन व्यापारियों की गाड़ियां, मिनी ट्रक जरूर पकड़े गये, उनसे मारपीट की गयी और गोवंश रक्षा के नाम पर उनके पशु छीन लिये गये। उन व्यापारियों ने केस भी दर्ज कराये क्योंकि वे पशुपालन का, दूध का व्यापार करते थे और उनके पास आधिकारिक रूप से खरीदे गये पशुओं की रसीदें थीं।

राजनीति प्रेरित यह विभाजन रेखाएं समाज को लगातार असहिष्णु बना रही हैं। धार्मिक आक्रामकता जिस तर्कहीनता के वातावरण का निर्माण कर रही है वहां नये ज्ञान, नये विचार ज्ञान के नये आधुनिक अनुशासनों के अलावा बुद्धिजीवी समाज पर भी हमले हो रहे हैं। अजीब विरोधाभासी समय है यह। एक ओर नयी वैज्ञानिक खोज और उच्च तकनीकी ज्ञान, विकास की धुरी बन रहा है। दूसरी ओर धार्मिकता की रूढ़ियां, अंधविश्वास और तर्कहीनता दो शताब्दियों के बाद फिर वापिस आकर समाज का चेहरा बन रहे हैं। जिस वैज्ञानिक सोच और तार्किकता को हमारे विश्वविख्यात वैज्ञानिकों जे.सी. बोस, प्रफुल्लचंद्रराय, सत्येन बोस आदि ने समाज के उन्नतिशील स्वरूप में स्थापित किया था, आज उन्नीसवीं सदी की सोच रखने वाले अनपढ़ स्वयंभू नेता डा. नरेन्द्र दाभोलकर, गोविन्द पानसारे और कन्नड़ भाषा-साहित्य के विद्वान कालबुर्गी जैसे लोगों की हत्या कर समाज को पुनः पिछड़ेपन की ओर ले जाना चाहते हैं।

ये केवल आपराधिक कांड नहीं हैं। इन घटनाओं के पीछे जब राजनैतिक मंतव्य होते हैं तो संकट कई गुना बढ़ जाता है।